International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.42
IJSSER 2025; 7(1): 998-999
www.socialsciencejournals.net
Received: 18-04-2025
Accepted: 20-05-2025

डॉ. विजय कुमार
सहायक प्राध्यापक, दौलत राम महाविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विजय कुमार
सहायक प्राध्यापक, दौलत राम महाविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

बौद्ध धर्म की वैचारिकी

डॉ. विजय कुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26649845.2025.v7.i1l.435

सार

महात्मा बुद्ध के विचारों ने भारतीय समाज में एक गहरी वैचारिक क्रांति को जन्म दिया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था, कर्मकांड, अंधविश्वास और सामाजिक असमानता के विरुद्ध तर्क, करुणा और वैज्ञानिक दृष्टि को महत्व दिया। बुद्ध ने मनुष्य की श्रेष्ठता को जन्म से नहीं, बल्कि कर्म से निर्धारित माना और 'आत्मदीपो भव' का संदेश देकर मानव-केन्द्रित चिंतन को स्थापित किया। उनके उपदेशों को उनके अनुयायियों ने त्रिपिटकों में संकलित किया, जिसने बौद्ध दर्शन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। दलित चेतना के उभार में बुद्ध के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिसने हाशिए के वर्गों को समानता, स्वाभिमान और सामाजिक मुक्ति का मार्ग दिखाया। डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म को अपनाना बुद्ध के समानतामूलक चिंतन की प्रासंगिकता को प्रमाणित करता है। आज के समय में बौद्ध दर्शन का करुणा, अहिंसा और बंधुत्व का मार्ग समाज में मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य शब्द: करुणा, समानता, अनीश्वरवाद, सामाजिक न्याय, बौद्ध दर्शन

प्रस्तावना

महात्मा बुद्ध को वैशाख पूर्णिमा के दिन बोधगया में पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए ज्ञान प्राप्त हुआ था और वैशाख पूर्णिमा के दिन ही कुशीनगर में महात्मा बुद्ध को निर्वाण की प्राप्ति हुई थी। बुद्ध अपने जीवित रहते सामाजिक समस्याओं के प्रति संघर्ष करते रहें। उनके निर्वाण के बाद उनके अनुयायियों ने बुद्ध के दार्शनिक विचारों को संग्रहित किया और उसको तीन पिटकों में बाँटा, जिन्हें 'त्रिपिटक' कहा गया। बुद्ध ने ही भारत को करुणा और अहिंसा का मार्ग दिखाया था। प्रसिद्ध दलित चिंतक तुलसीराम ने अपनी कविता के माध्यम से बुद्ध के विचारों समझाया है :-

चला चलीं मुनि आई.....
बुद्ध के विचरवा में का का मिलेला
का का मिलेला भन्ते, का का मिलेला
शान्ति. बराबरी आउर भाईचरवा
चला चली सुनिआइ बुद्ध के बिचरवा।
बुद्ध के विचरवा में आउर का मिलेला।
आउर का मिलेला भन्ते आउर का मिलेला
दुखवा ह, दुखवा क कारन
अउर हउवे दुख के निवरवा
चला चलीं सुनि आई बुद्ध के विचरवा ॥ [1]

भारतीय साहित्य में दलित चेतना के उभार में महात्मा बुद्ध के विचारों की निर्णायक भूमिका रही है। बुद्ध के जन्म के समय भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था और जातियों पर आधारित था। समाज में आडंबर और रूढ़ियाँ अपने चरम पर थी। मनुष्य की पहचान उसके कर्मों से न होकर जाति से होती थी। जुवाहरलाल नेहरू अपनी पुस्तक 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखते हैं- "बुद्ध में प्रचलित धर्म, अंधविश्वास, कर्म-कांड और यज्ञ आदि की प्रथा पर और इसके साथ जुड़े हुए निहित स्वार्थों पर हमला करने का साहस था। उन्होंने आधिभौतिक और परमार्थी नजरिये का, करामातों, इलहम, आलौकिक व्यापार आदि का विरोध किया। दलील, अक्ल और तजुरवे पर उनका आग्रह था और इन्होंने नीति या इखलाक पर जोर दिया।

उनका तरीका था मनौवैज्ञानिक विश्लेषण का और इस मनोविज्ञान में आत्मा को जगह नहीं दी गई थी। उनका नजरिया आधिभौतिक कल्पना की बासी हवा के बाद पहाड़ की ताजी हवा के हलके थपेड़े-सा जान पड़ता है।"[2]

बौद्ध दर्शन भारतीय समाज के लिए नवजागरण का उदय था। बुद्ध के विचारों ने धर्म और ईश्वर की पूरी अवधारणा को ही बदल दिया था। भारतीय समाज जो कर्मकांड और मिथ्याचारों में जकड़ा हुआ था, अचानक से बुद्ध के माध्यम से स्वंय को स्वतंत्र महसूस करने लगा था। बुद्ध के विचारों ने साहित्य, कला, संस्कृति और समाज के प्रत्येक वर्ग को गहराई से प्रभावित किया। हिंदी साहित्य में भी निर्गुण कवियों पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। विशेषकर कबीर पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव ज़्यादा पड़ा। कबीर का 'एक ही चाम, एक ही गुदा' और 'ऊंचे कुल का जनमिया करनी उंच न होय' बुद्ध से ही प्रेरित था। बुद्ध ने जन्म को नहीं कर्म को उच्च बताया था। इसी कारण बुद्ध ने 'आत्म दीपो भव' का विचार दिया था। इस संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि "जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान आंदोलन का आरंभ किया, जो गांधी और अंबेडकर तक चलता आया है जो आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुमय की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुमय केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ही पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर ही नहीं, कर्म पर अवलंबित है।"[3] तुलसीराम लिखते हैं "महामानव गौतम बुद्ध का दर्शन, जिसे सारे विश्व में बौद्ध धर्म के नाम से जाना जाता है, वास्तव मे वह धर्म नहीं, बल्कि 'धम्म' यानि सिद्धान्त है। यदि परंपरा के अनुसार इसे धर्म ही मान लिया जाए, तो भी इसमें ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है। अपनी नास्तिकता के चलते ही बौद्ध धर्म वर्ण-व्यवस्था का प्रबल विरोधी बना, क्योंकि हिंदू धर्म के सभी ग्रंथ वर्ण-व्यवस्थाजनित ऊंच-नीच के हिंसक भेदभाव को ईश्वरीय देन बताते है।"[4] दलित रचनाकार भी ईश्वर की सत्ता का नकार करते है। क्योंकि यह शोषणकारी व्यवस्था ईश्वर पर टिकी हुई है जो कई शोषण को जन्म देती है। जैसे वर्ण-व्यवस्था को मानना, वेदों को प्रामाणिक मानना, जाति-पाति तथा ऊंच-नीच को मानना इत्यादि। कंवल भारती बौद्ध धर्म के बारे में लिखते हैं कि "बुद्ध अनीश्वरवादी है, आत्मा और ब्रह्म को भी नहीं मानते हैं। इस तरह बौद्ध धर्म में परलोकवाद, भाग्यवाद, जन्म-जन्मांतर, अवतारवाद, स्वर्ग-नरक और अलौकिक सत्ता के सारे पाखंडों से मुक्ति मिल जाती है।"[5]

बुद्ध के दर्शन में स्वर्ग-नरक की अवधारणा नहीं है। उनका मानना था कि ईश्वर अगर है तो यही धरती पर है। वह ऊर्जा बनकर हमारे साथ ही रहते हैं। हाशिये का समाज कर्मकांड और कुरीतियों में सबसे ज्यादा उलझा हुआ था। बौद्ध दर्शन ने हाशिए के समाज को नई चेतना दी और कर्मकांड व कुरीतियों से मुक्त कराया। रामकुमार अहिरवर भी लिखते हैं "बौद्ध साहित्य वह प्रथम साहित्य है, जिसमें उस विलक्षण वैचारिक क्रांति का वर्णन हैं, जिसमें मनुवादी ताकतों की धज्जी उड़ाई गई है। वही से दलित समाज व चिंतन को नई दिशा प्राप्त हुई।"[6]

बुद्ध ने आध्यात्म और साधना को वैज्ञानिकता से जोड़ा था। बुद्ध ने समाज में फैले जाति-व्यवस्था और ऊंच-नीच की मानसिकता का विरोध किया तथा हाशिये पर पड़े समाज को समानता का अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया था। जिसके कारण ब्राह्मणवादी वर्ण-व्यवस्था चरमराने लगी थी। वास्तव में, बुद्ध सामाजिक असमानता के लिए सामने आए थे। बुद्ध ने केवल जाति और वर्ण-व्यवस्था का ही विरोध नहीं किया, बल्कि समाज को तार्किक और जागरूक भी किया था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 1956 ई. में अनायास ही बौद्ध धर्म को नहीं अपना लिया था। बौद्ध धर्म ही वह धर्म था जहाँ डॉ. अंबेडकर को समानता, स्वतंत्रता और प्रेम का मार्ग दिखाई दिया था। डॉ. अमल सिंह 'भिक्षुक' भी लिखते हैं कि "आंबेडकर ने हिन्दू धर्म का त्याग करके बौद्ध धर्म को अंगीकार किया था। बौद्ध धर्म विश्वास को नहीं, वैज्ञानिकता और तार्किकता को अधिक महत्व देता है। बुद्ध का आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, पूर्व कर्म, कर्मकांड, भाग्य-भरोसा आदि में किंचित भी विश्वास नहीं था। बुद्ध सामाजिक समानता के पक्षधर थे। चातुर्वर्ण और इससे उत्पन्न जातियों-उपजातियों को बुद्ध अप्राकृतिक, मिथ्या, काल्पनिक तथा स्वार्थ सिद्धि हेतु समर्थ और चालाक लोगों द्वारा मनगढंत ढंग से गढ़ी हुई मानते थे। बुद्ध के धर्म का केन्द्र बिंदु मनुष्य है। अतः मनुष्य के सर्वांगिण विकास एवं कल्याण हेतु बुद्ध द्वारा आविष्कार किया हुआ धर्म एक सर्वथा नवीन एवं ईश्वरीय सत्ता से पूर्णतया मुक्त मानव की उन्नति एवं प्रशस्ति के अभ्युदय का अनुपम मार्ग है।"[7] इसी कारण, दलित साहित्य का आधार बुद्ध अनायास नहीं हैं, उनका विचार समाज के हाशिये पर पड़े लोगों को आत्मसम्मान और आत्मबल भी प्रदान करता है।

अत: बौद्ध धर्म के दर्शन में जो करुणा, अहिंसा और बंधुत्व का मार्ग है वही वर्तमान में मनुष्य को पशुता के मार्ग से उभार सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. तुलसीराम, तुलसीराम का कवि मन, बहुजन वैचारिकी, अंक-1, जनवरी-2016, पृष्ठ- 23
2. जवाहरलाल नेहरू, हिंदुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृष्ठ- 137
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण- 2011, पृष्ठ-86
4. तुलसीराम, बौद्ध धर्म तथा वर्ण-व्यवस्था, बहुजन वैचारिकी, अंक-1, जनवरी-2016, पृष्ठ- 67
5. स. उमा शंकर चौधरी, हाशिये की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण- 2012, पृष्ठ-275
6. रामकुमार अहीरवार, दलित आंदोलन और बौद्ध साहित्य, दलित साहित्य वार्षिकी-2004, पृष्ठ-53
7. डॉ. अमल सिंह 'भिक्षुक', दलित साहित्य : तेरी, मेरी और उसकी, दलित साहित्य वार्षिकी-2013, पृष्ठ-53